

Chapter दस

शिव तथा उमा द्वारा मार्कण्डेय ऋषि का गुणगान

इस अध्याय में श्री सूत गोस्वामी ने वर्णन किया है कि किस तरह मार्कण्डेय ऋषि को शिव से वर मिले।

एक बार जब शिवजी अपनी पत्नी पार्वती समेत आकाश से होकर यात्रा कर रहे थे, तो उन्होंने श्री मार्कण्डेय को ध्यान समाधि में लीन देखा। पार्वती के अनुरोध पर, शिवजी उस ऋषि की तपस्या का फल देने उसके समक्ष उपस्थित हुए। श्री मार्कण्डेय ने समाधि से बाहर आकर तीनों लोक के गुरु शिव तथा पार्वती को देखा और नमस्कार, सत्कार के वचन तथा आसन प्रदान करके उनकी पूजा की।

तब शिवजी ने भगवान् के सन्त भक्तों की प्रशंसा की और श्री मार्कण्डेय से मनवांछित वर माँगने के लिए कहा। उन्होंने भगवान् श्री हरि, भगवान् के भक्तों तथा स्वयं शिवजी के प्रति अविचल भक्ति की याचना की। शिवजी ने मार्कण्डेय की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें प्रसिद्धि, प्रलय होने तक वृद्धावस्था से मुक्ति, काल की तीनों अवस्थाओं का ज्ञान, त्याग, स्वरूपसिद्ध ज्ञान तथा पुराणों के शिक्षक के पद के वर प्रदान किये।

जो लोग मार्कण्डेय ऋषि की कथा का कीर्तन तथा श्रवण करते हैं, वे भौतिक जीवन से मोक्ष प्राप्त करेंगे जो सकाम कर्म से उत्पन्न संचित इच्छाओं पर आधारित है।

सूत उवाच

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् ।

वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; सः—वह, मार्कण्डेय; एवम्—इस तरह; अनुभूय—अनुभव करके; इदम्—यह; नारायण-विनिर्मितम्—भगवान् नारायण द्वारा निर्मित; वैभवम्—ऐश्वर्यमय प्रदर्शन; योग-मायायाः—अपनी अन्तरंगा योगशक्ति का; तम्—उसकी; एव—निस्सन्देह; शरणम्—शरण में; ययौ—चला गया।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् नारायण ने अपनी मोहमयी शक्ति का यह ऐश्वर्यशाली प्रदर्शन नियोजित किया था। इसका अनुभव करके मार्कण्डेय ऋषि ने भगवान् की शरण ग्रहण की।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे ।

यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; प्रपन्नः—शरणागत; अस्मि—मैं हूँ; अङ्घ्रि-मूलम्—चरणकमलों के तलवों; ते—तुम्हारा; प्रपन्न—शरण लेने वालों का; अभय-दम्—अभय दान देने वाला; हरे—हे हरि; यत्-मायया—जिसकी माया से; अपि—भी; विबुधाः—बुद्धिमान देवता; मुह्यन्ति—मोहित हो जाते हैं; ज्ञान-काशया—जो झूठे ही ज्ञान जैसा प्रतीत होती है।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : हे भगवान् हरि, मैं आपके उन चरणकमलों के तलवों की शरण ग्रहण करता हूँ जो उनकी शरण ग्रहण करने वालों को अभय दान देते हैं। बड़े-बड़े देवता भी आपकी माया से जो ज्ञान के वेश में उनके समक्ष प्रकट होती है, मोहित रहते हैं।

तात्पर्य : बद्धजीव भौतिक इन्द्रियतृप्ति के प्रति आकृष्ट होते हैं और वे प्रकृति की करनी का सावधानी से अध्ययन करते हैं। यद्यपि वे वैज्ञानिक ज्ञान में आगे बढ़ते प्रतीत होते हैं किन्तु वे भौतिक देह के साथ अपनी झूठी पहचान में अधिकाधिक फँसते जाते हैं जिससे वे अज्ञान में निमग्न होते रहते हैं।

सूत उवाच

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् ।

रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; तम्—उसको, मार्कण्डेय ऋषि को; एवम्—इस प्रकार; निभृत-आत्मानम्—समाधि में पूर्णतया निमग्न मन वाला; वृषेण—अपने बैल पर; दिवि—आकाश में; पर्यटन्—यात्रा करते हुए; रुद्राण्या—अपनी प्रिया रुद्राणी (उमा) के साथ; भगवान्—शक्तिशाली प्रभु; रुद्रः—शिव ने; ददर्श—देखा; स्व-गणैः—अपने संगियों से; वृतः—घिरे हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् रुद्र ने अपने बैल पर सवार अपनी प्रिया रुद्राणी तथा अपने निजी संगियों के साथ, मार्कण्डेय को समाधि में देखा।

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत ।
पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; उमा—उमा; तम्—उस; ऋषिम्—ऋषि को; वीक्ष्य—देख कर; गिरिशम्—शिव से; समभाषत—बोलीं;
पश्य—देखो न; इमम्—इस; भगवन्—मेरे प्रभु; विप्रम्—विद्वान् ब्राह्मण को; निभृत—स्थिर; आत्म-इन्द्रिय-आशयम्—
शरीर, इन्द्रियाँ तथा मन ।

ऋषि को देख कर देवी उमा ने भगवान् गिरिश से कहा, “हे प्रभु, जरा इस विद्वान् ब्राह्मण को, उसके शरीर, मन तथा इन्द्रियों को समाधि में अचल हुए, देखो।”

निभृतोदङ्गषत्रातो वातापाये यथार्णवः ।
कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

निभृत—अचल; उद—जल; ङ्गष-त्रातः—तथा मछलियों का झुंड; वात—वायु के; अपाये—बन्द होने पर; यथा—जिस तरह; अर्णवः—समुद्र; कुरु—कीजिये; अस्य—इसकी; तपसः—तपस्या का; साक्षात्—प्रकट; संसिद्धिम्—सिद्धि; सिद्धि-दः—सिद्धि-दाता; भवान्—आप ।

वह उस समुद्र के जल की तरह शान्त है जब वायु बन्द हो जाती है और मछलियाँ शान्त हो जाती हैं। इसलिए हे प्रभु, चूँकि आप तपस्या करने वाले को सिद्धि प्रदान करते हैं, इसलिए इस ऋषि को सिद्धि प्रदान करें जोकि उसे मिलनी चाहिए।

श्रीभगवानुवाच

नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—शक्तिमान् प्रभु ने कहा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; इच्छति—इच्छा करती है; आशिषः—वर; क्व अपि—किसी भी देश में; ब्रह्म-ऋषिः—सन्त ब्राह्मण; मोक्षम्—मोक्ष; अपि उत—ही; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—दिव्य; भगवति—भगवान् के लिए; लब्धवान्—प्राप्त किया है; पुरुषे—भगवान् के लिए; अव्यये—अव्यय ।

शिवजी ने उत्तर दिया : निश्चय ही, यह सन्त ब्राह्मण किसी वर की यहाँ तक कि मोक्ष तक की भी कामना नहीं करता क्योंकि इसने भगवान् अव्यय की शुद्ध भक्ति प्राप्त कर ली है।

तात्पर्य : नैवेच्छत्याशिषः क्वापि सूचित करता है कि मार्कण्डेय ऋषि इस ब्रह्माण्ड के किसी भी लोक में प्राप्य किसी वर में रुचि नहीं रखते थे। न ही, उन्हें कोई इच्छा थी क्योंकि उन्होंने स्वयं भगवान् को प्राप्त कर लिया था।

अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना ।
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अथ अपि—तो भी; संवदिष्यामः—हम बात करेंगे; भवानि—हे भवानी; एतेन—इस; साधुना—शुद्ध भक्त से; अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; परमः—सर्वोत्तम; लाभः—लाभ; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; साधु-समागमः—सन्त भक्तों की संगति।

तो भी हे भवानी, चलो हम इस सन्त पुरुष से बातें करें। आखिर सन्त भक्तों की संगति मनुष्य की सर्वोच्च उपलब्धि है।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्स सतां गतिः ।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कह कर; तम्—उस ऋषि के पास; उपेयाय—जाकर; भगवान्—वरिष्ठ देवता; सः—वह; सताम्—शुद्ध आत्माओं के; गतिः—शरण; ईशानः—स्वामी; सर्व-विद्यानाम्—विद्या की समस्त शाखाओं के; ईश्वरः—नियन्ता; सर्व-देहिनाम्—समस्त देहधारी जीवों के।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस तरह कहने के बाद, शुद्धात्माओं के आश्रय, समस्त आध्यात्मिक विद्याओं के स्वामी तथा समस्त देहधारी जीवों के नियन्ता भगवान् शंकर उस ऋषि के पास गये।

तयोरगमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनोः ।

न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों का; आगमनम्—आना; साक्षात्—स्वयं; ईशयोः—शक्तिमान पुरुषों का; जगत्-आत्मनोः—ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं का; न वेद—नहीं देख पाया; रुद्ध—रुका हुआ; धी-वृत्तिः—मन की गति; आत्मानम्—स्वयं; विश्वम्—बाह्य ब्रह्माण्ड; एव—निस्सन्देह; च—भी।

चूँकि मार्कण्डेय का भौतिक मन कार्य करना बन्द कर चुका था अतएव वे ब्रह्माण्ड के नियन्ता शिव तथा उनकी पत्नी का आना देख नहीं पाये, जो स्वयं उन्हें देखने आये थे। मार्कण्डेय ध्यान में इतने लीन थे कि उन्हें अपनी या बाह्य जगत की कोई सुधि-बुधि नहीं थी।

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया ।

आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भगवान्—महापुरुष; तत्—उस; अभिज्ञाय—समझ कर; गिरिशः—भगवान् गिरिश ने; योग-मायया—अपनी योगशक्ति से; आविशत्—प्रवेश किया; तत्—मार्कण्डेय के; गुहा-आकाशम्—हृदय के गुप्त आकाश में; वायुः—वायु; छिद्रम्—छेद; इव—सदृश; ईश्वरः—प्रभु।

स्थिति से भलीभाँति परिचित होने पर, शक्तिमान भगवान् शिव ने मार्कण्डेय के हृदय-

आकाश के भीतर प्रविष्ट होने के लिए अपनी योगशक्ति का प्रयोग किया जिस तरह वायु छेद में से प्रवेश कर जाती है।

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् ।

त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ ११ ॥

व्याघ्रचर्माम्बरं शूलधनुरिष्वसिचर्मभिः ।

अक्षमालाडमरुककपालं परशुं सह ॥ १२ ॥

बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः ।

किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

आत्मनि—अपने भीतर; अपि—भी; शिवम्—शिव को; प्राप्तम्—आया हुआ; तडित्—बिजली के समान; पिङ्ग—पीलाभ; जटा—बालों की लटें; धरम्—धारण किये; त्रि-अक्षम्—तीन नेत्रों सहित; दश-भुजम्—तथा दस भुजाएँ; प्रांशुम्—अत्यधिक ऊँचा; उद्यन्तम्—उठा हुआ; इव—सदृश; भास्करम्—सूर्य को; व्याघ्र—बाघ का; चर्म—रोँएदार चमड़ा; अम्बरम्—वस्त्र के रूप में; शूल—त्रिशूल; धनः—धनुष; इषु—बाण; असि—तलवार; चर्मभिः—तथा ढाल सहित; अक्ष-माला—जपमाला; डमरुक—डमरू; कपालम्—तथा सिर; परशुम्—फरसा; सह—सहित; बिभ्राणम्—प्रदर्शित करते हुए; सहसा—एकाएक; भातम्—प्रकट; विचक्ष्य—देख कर; हृदि—हृदय में; विस्मितः—चकित; किम्—क्या; इदम्—यह; कुतः—कहाँ से; एव—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार; समाधेः—समाधि से; विरतः—हटा; मुनिः—मुनि।

श्री मार्कण्डेय ने सहसा भगवान् शिव को अपने हृदय के भीतर प्रकट हुए देखा। शिवजी के सुनहरे केश बिजली के समान थे। उनके तीन नेत्र, दस भुजाएँ तथा ऊँचा शरीर था, जो उदय हो रहे सूर्य की तरह चमक रहा था। वे व्याघ्र चर्म पहने थे और त्रिशूल, धनुष, बाण, तलवार तथा ढाल लिये थे। वे जपमाला, डमरू, कपाल तथा परशु भी लिए थे। मुनि ने चकित होकर अपनी समाधि तोड़ दी और सोचा, “यह कौन है और कहाँ से आया है?”

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् ।

रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

नेत्रे—अपने नेत्र; उन्मील्य—खोल कर; ददृशे—देखा; स-गणम्—अपने संगियों के साथ; स-उमया—तथा उमा समेत; आगतम्—आया हुआ; रुद्रम्—रुद्र को; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; एक-गुरुम्—एकमात्र गुरु; ननाम—नमस्कार किया; शिरसा—सिर के बल; मुनिः—मुनि ने।

अपनी आँखें खोल कर मुनि ने तीनों जगत के गुरु भगवान् रुद्र को उमा तथा उनके गणों समेत देखा। तब मार्कण्डेय ने सिर के बल झुक कर उन्हें सादर नमस्कार किया।

तात्पर्य : जब मार्कण्डेय ऋषि ने अपने हृदय के भीतर शिव तथा उमा को देखा तो वे तुरन्त उनके प्रति तथा स्वयं अपने प्रति भी सतर्क हो उठे। दूसरी ओर, समाधि के समय वे भगवान् के भाव में लीन थे और अपने को प्रत्यक्ष दर्शक के रूप में भूल चुके थे।

तस्मै सपर्या व्यदधात्सगणाय सहोमया ।

स्वागतासनपाद्यार्घ्यगन्धस्त्रग्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको; सपर्याम्—पूजा; व्यदधात्—अर्पित की; स-गणाय—उनके गणों समेत; सह उमया—उमा सहित; सु-आगत—स्वागत के शब्दों से; आसन—बैठने के लिए स्थान देते हुए; पाद्य—चरण धोने के लिए जल; अर्घ्य—सुगन्धित पीने का पानी; गन्ध—सुगन्धित तेल; स्त्रक्—माला; धूप—धूप; दीपकैः—तथा दीपकों से ।

मार्कण्डेय ने उमा तथा शिव के गणों समेत भगवान् शिव की पूजा स्वागत के शब्दों, आसन, उनके पाँव धोने के लिए जल, सुगन्धित पीने के पानी, सुगन्धित तेल, फूल-मालाओं तथा आरती के दीपक द्वारा की ।

आह त्वात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो ।

करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

आह—मार्कण्डेय ने कहा; तु—निस्सन्देह; आत्म-अनुभावेन—निजी आनन्द अनुभूति से; पूर्ण-कामस्य—सभी प्रकार से तुष्ट; ते—आपके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; करवाम—कर सकता हूँ; किम्—क्या; ईशान—हे ईश्वर; येन—जिससे; इदम्—यह; निर्वृतम्—शान्त बनता है; जगत्—पूरा संसार ।

मार्कण्डेय ने कहा : हे विभु, मैं आपके लिए, जो अपने ही आनन्द में सदैव तुष्ट रहने वाले हैं, क्या कर सकता हूँ? निस्सन्देह, आप अपनी कृपा से इस सारे जगत को तुष्ट करते हैं ।

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च ।

रजोजुषेऽथ घोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; शिवाय—सर्वमंगलकारी; शान्ताय—शान्त; सत्त्वाय—सतोगुण के साक्षात् रूप; प्रमृडाय—आनन्द के दाता; च—तथा; रजः-जुषे—रजोगुण के सम्पर्क में रहने वाला; अथ—भी; घोराय—घोर; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—आपको; तमः-जुषे—तमोगुण के संगी ।

हे सर्वमंगलकारी दिव्य पुरुष, मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ। सतोगुण के स्वामी के रूप में आप आनन्द के दाता हैं, रजोगुण के सम्पर्क में आप अत्यन्त भयावने लगते हैं और तमोगुण से भी आप सान्निध्य रखते हैं ।

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः ।

परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इन शब्दों द्वारा; स्तुतः—स्तुति किया गया; सः—वह; भगवान्—शक्तिमान शिवजी; आदि-देवः—देवताओं के अग्रणी; सताम्—साधु भक्तों के; गतिः—आश्रय, शरण; परितुष्टः—पूरी तरह तुष्ट; प्रसन्न-आत्मा—मन में प्रसन्न; प्रहसन्—हँसते हुए; तम्—मार्कण्डेय से; अभाषत—बोले।

सूत गोस्वामी ने कहा : देवताओं में अग्रणी तथा साधु भक्तों के आश्रय रूप भगवान् शिव, मार्कण्डेय की स्तुति से तुष्ट हो गए। प्रसन्न होने के कारण वे हँसने लगे और मुनि से बोले।

श्रीभगवानुवाच

वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः ।

अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—शिवजी ने कहा; वरम्—वर; वृणीष्व—चुनो; नः—हमसे; कामम्—जो इच्छा हो; वर-द—समस्त वर देने वालों में से; ईशाः—नियंता, स्वामी; वयम्—हम; त्रयः—तीन (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर); अमोघम्—व्यर्थ न जाने वाला; दर्शनम्—दर्शन; येषाम्—जिनके; मर्त्यः—मर्त्य जीव; यत्—जिससे; विन्दते—प्राप्त करता है; अमृतम्—अमरता।

शिवजी ने कहा : तुम मुझसे कोई वर माँगो क्योंकि वर देने वालों में से हम तीन—ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं—सर्वश्रेष्ठ हैं। हमारा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता क्योंकि हमारे दर्शन मात्र से मर्त्य प्राणी अमरता प्राप्त कर लेता है।

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसङ्गा भूतवत्सलाः ।

एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ॥ २० ॥

सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते ।

अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणाः—ब्राह्मण; साधवः—साधु स्वभाव के; शान्ताः—शान्त तथा द्वेष एवं अन्य दुर्गुणों से रहित; निःसङ्गाः—भौतिक संगति से मुक्त; भूत-वत्सलाः—जीवों पर सदय; एक-अन्त-भक्ताः—अनन्य भक्त; अस्मासु—हमारे (ब्रह्मा, हरि तथा शिव); निर्वैराः—कभी घृणा से युक्त नहीं; सम-दर्शिनः—सबको समान दृष्टि से देखने वाले; स-लोकाः—सारे जगतों के निवासियों सहित; लोक-पालाः—विभिन्न लोकों के शासक; तान्—उन ब्राह्मणों को; वन्दन्ति—वन्दना करते हैं; अर्चन्ति—पूजा करते हैं; उपासते—सहायता करते हैं; अहम्—मैं; च—भी; भगवान्—महान् स्वामी; ब्रह्मा—ब्रह्मा; स्वयम्—स्वयं; च—भी; हरिः—हरि; ईश्वरः—भगवान्।

ब्रह्मा, हरि तथा मुझ समेत सारे लोकों के निवासी तथा शासन करने वाले देवता उन ब्राह्मणों की वन्दना, पूजा तथा सहायता करते हैं, जो सन्त स्वभाव के, सदैव शान्त, भौतिक आसक्ति से रहित, समस्त जीवों पर दयालु, हमारे प्रति शुद्ध भक्ति से युक्त, घृणा से रहित एवं समदृष्टि से युक्त होते हैं।

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते ।

नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—वे; मयि—मुझमें; अच्युते—भगवान् विष्णु में; अजे—ब्रह्मा में; च—तथा; भिदाम्—अन्तर; अणु—लेश; अपि—भी; चक्षते—देखते हैं; न—नहीं; आत्मनः—अपना; च—तथा; जनस्य—अन्य लोगों का; अपि—भी; तत्—इसलिए; युष्मान्—तुम; वयम्—हम; ईमहि—पूजा करते हैं।

ये भक्तगण भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा मुझमें अन्तर नहीं करते, न ही वे अपने तथा अन्य जीवों के बीच अन्तर करते हैं। तुम इसी तरह के सन्त भक्त हो, इसलिए हम तुम्हारी पूजा करते हैं।

तात्पर्य : ब्रह्मा तथा शिव क्रमशः भगवान् विष्णु की सृजन तथा संहार शक्तियों की अभिव्यक्ति हैं। इस तरह भौतिक जगत के इन तीन शासनकर्ता देवों में एकता बनी रहती है। मनुष्य को, प्रकृति के गुणों के आधार पर, भगवान् की शासन शक्ति में भौतिक द्वैत नहीं ढूँढना चाहिए यद्यपि यह शक्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इन तीन रूपों में प्रकट होती है।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अप्-मयानि—पवित्र जल से युक्त; तीर्थानि—तीर्थस्थल; न—नहीं; देवाः—देवताओं के अर्चाविग्रह रूप; चेतन-उज्झिताः—जीवन से रहित; ते—वे; पुनन्ति—शुद्ध करते हैं; उरु-कालेन—दीर्घकाल के पश्चात्; यूयम्—तुम सब; दर्शन-मात्रतः—केवल दर्शन करने से।

मात्र जलाशय तीर्थस्थान नहीं होते, न ही देवताओं की निर्जीव मूर्तियाँ वास्तविक पूज्य अर्चाविग्रह होती हैं। चूँकि बाह्य दृष्टि पवित्र नदियों तथा देवताओं के उच्च आशय को समझ नहीं पाती, इसलिए ये दीर्घकाल बाद ही पवित्र बना पाते हैं। किन्तु तुम जैसे भक्त, दर्शन मात्र से, पवित्र कर देते हो।

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् ।

बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; नमस्यामः—हम नमस्कार करते हैं; ये—जो; अस्मत्-रूपम्—हमारे (शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु के) रूप; त्रयी-मयम्—तीन वेदों के द्वारा प्रदर्शित; बिभ्रति—वहन करते हैं; आत्म-समाधान—आत्म पर केन्द्रित ध्यान समाधि द्वारा; तपः—तपस्या द्वारा; स्वाध्याय—अध्ययन द्वारा; संयमैः—तथा विधि-विधानों के पालन द्वारा।

परमात्मा का ध्यान करके, तपस्या करके, वेदाध्ययन करके तथा विधि-विधानों का पालन करके, ब्राह्मणजन अपने भीतर तीनों वेदों को, जोकि विष्णु, ब्रह्मा तथा मुझसे अभिन्न हैं, धारण करते हैं। इसलिए मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् का शुद्ध भक्त सबसे उच्च ब्राह्मण माना जाता है क्योंकि सारे आध्यात्मिक प्रयत्न ईश्वर की प्रेमाभक्ति में ही आकर समाप्त हो जाते हैं।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः ।

शुद्धेरन्नन्त्यजाश्चापि किमु सम्भाषणादिभिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

श्रवणात्—श्रवण करने से; दर्शनात्—दर्शन करने से; वा—अथवा; अपि—भी; महा-पातकिनः—सबसे अधम पाप करने वाले; अपि—भी; वः—तुम; शुद्धेरन्—शुद्ध बन जाते हैं; अन्त्य-जाः—अछूत लोग; च—तथा; अपि—भी; किम् उ—क्या कहा जाय; सम्भाषण-आदिभिः—प्रत्यक्ष बात करने इत्यादि से।

अधम से अधम पापी तथा अछूत भी तुम जैसे पुरुषों का श्रवण करने या दर्शन करने से शुद्ध बन जाते हैं। तब जरा कल्पना करो कि सीधे तुमसे बात करने से वे कितने शुद्ध बन जाते हैं?

सूत उवाच

इति चन्द्रललामस्य धर्मगह्योपबृंहितम् ।

वचोऽमृतायनमृषिर्नातृष्यत्कर्णयोः पिबन् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; चन्द्र-ललामस्य—चन्द्रमा से सुशोभित शिव का; धर्म-गुह्य—धर्म के गुह्य सार से; उपबृंहितम्—पूरित; वचः—शब्द; अमृत-अयनम्—अमृत के आगार; ऋषिः—ऋषि; न अतृष्यत्—तृप्ति नहीं हुई; कर्णयोः—अपने कानों से; पिबन्—पीते हुए।

सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् शिव के अमृत तुल्य शब्दों को, जोकि धर्म के गुह्य सार से पूरित थे, अपने कानों से पीते हुए मार्कण्डेय ऋषि तुष्ट नहीं हुए।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि शिवजी द्वारा प्रशंसित होने के लिए उत्सुक न थे अपितु उन्हें शिवजी द्वारा धर्म के सिद्धान्तों की गहन अनुभूति अच्छी लग रही थी, इसीलिए वे और अधिक सुनना चाह रहे थे।

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् ।

शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; चिरम्—दीर्घकाल तक; मायया—माया द्वारा; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; भ्रामितः—भटकाया हुआ; कर्शितः—थका; भृशम्—अत्यधिक; शिव—शिव के; वाक्-अमृत—अमृत तुल्य शब्दों से; ध्वस्त—विनष्ट; क्लेश-पुञ्जः—कष्टों का समूह; तम्—उससे; अब्रवीत्—बोला।

भगवान् विष्णु की माया द्वारा प्रलय के जल में दीर्घकाल तक भटकाये गये होने के कारण मार्कण्डेय अत्यधिक थक चुके थे। किन्तु शिवजी के अमृत तुल्य शब्दों से उनका संचित क्लेश नष्ट हो गया। अतः वे शिवजी से बोले।

तात्पर्य : मार्कण्डेय ऋषि भगवान् विष्णु की माया का दर्शन करना चाहते थे और काफी कष्ट भोग चुके थे। किन्तु अब शिव के रूप में भगवान् विष्णु पुनः ऋषि के समक्ष प्रकट हुए थे और

उन्होंने आनन्दमय उपदेशों द्वारा उन्हें सारे कष्टों से मुक्त कर दिया ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ।

यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

श्री-मार्कण्डेयः उवाच—श्री मार्कण्डेय ने कहा; अहो—ओह; ईश्वर—महान् स्वामियों की; लीला—लीला; इयम्—यह; दुर्विभाव्या—अविश्वसनीय; शरीरिणाम्—देहधारी जीवों के लिए; यत्—क्योंकि; नमन्ति—नमस्कार करते हैं; ईशितव्यानि—उनको जो उनके द्वारा नियंत्रित होते हैं; स्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; जगत्-ईश्वराः—ब्रह्माण्ड के शासक ।

श्री मार्कण्डेय ने कहा : देहधारी जीवों के लिए ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं की लीलाओं को समझ पाना सबसे कठिन है क्योंकि ऐसे प्रभु अपने ही द्वारा शासित जीवों को सिर झुकाते तथा उनकी स्तुति करते हैं ।

तात्पर्य : भौतिक जगत में बद्धजीव एक-दूसरे पर रोब दिखाना चाहते हैं, इसलिए वे ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वामियों की लीलाओं को नहीं समझ पाते । ऐसे प्रामाणिक स्वामियों में अद्भुत उदार मनोवृत्ति पाई जाती है, अतः वे कभी कभी अपनी प्रजा में से अत्यन्त योग्य तथा साधु स्वभाववाले व्यक्ति को नमस्कार तक करते हैं ।

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् ।

आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

धर्मम्—धर्म; ग्राहयितुम्—स्वीकार करवाना; प्रायः—अधिकांशतः; प्रवक्तारः—वैध वक्ताओं; च—तथा; देहिनाम्—सामान्य देहधारियों के लिए; आचरन्ति—कर्म करते हैं; अनुमोदन्ते—प्रोत्साहित करते हैं; क्रियमाणम्—सम्पन्न करने वाला; स्तुवन्ति—स्तुति करते हैं; च—भी ।

सामान्यतया देहधारी जीवों को धार्मिक सिद्धान्त स्वीकार करने के लिए प्रेरित करने के लिए ही प्रामाणिक धर्माचार्य, अन्यो को प्रोत्साहित करके तथा उनके आचरण की प्रशंसा करके, आदर्श आचरण प्रदर्शित करते हैं ।

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः ।

न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतावता—ऐसे (विनयशीलता के प्रदर्शन) द्वारा; भगवतः—भगवान् का; स्व-माया—अपनी माया; मय—से युक्त; वृत्तिभिः—कार्यों द्वारा; न दुष्येत—बिगड़ता नहीं; अनुभावः—शक्ति; तैः—उनके द्वारा; मायिनः—जादूगर की; कुहकम्—करामातें; यथा—जिस तरह ।

यह ऊपरी विनयशीलता दया का दिखावा मात्र है । भगवान् तथा उनके संगियों का ऐसा आचरण, जिसे भगवान् अपनी मोहिनी शक्ति से दिखलाते हैं, उनकी शक्ति को नहीं

बिगाड़ता जिस तरह जादूगर की शक्तियाँ जादूगरी की करामातें दिखाने से घटती नहीं।

सृष्टेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः ।

गुणैः कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृश्यथा ॥ ३१ ॥

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने ।

केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सृष्ट्वा—उत्पन्न करके; इदम्—इस; मनसा—अपने मन से, अपनी इच्छा मात्र से; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; आत्मना—परमात्मा रूप में; अनुप्रविश्य—बाद में प्रविष्ट होकर; यः—जो; गुणैः—गुणों के द्वारा; कुर्वद्भिः—कर्म करते हैं; आभाति—प्रकट होता है; कर्ता इव—मानो कर्ता हो; स्वप्न-दृक्—स्वप्न देखने वाला व्यक्ति; यथा—जिस तरह; तस्मै—उस; नमः—नमस्कार; भगवते—भगवान् को; त्रि-गुणाय—तीन गुणों वाले; गुण-आत्मने—प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी; केवलाय—शुद्ध; अद्वितीयाय—अद्वितीय; गुरवे—गुरु को; ब्रह्म-मूर्तये—परब्रह्म के साकार रूप।

मैं उन भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपनी इच्छा मात्र से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि की और फिर जो उसमें परमात्मा रूप में प्रविष्ट हो गये। वे प्रकृति के गुणों को क्रियमाण बनाकर इस जगत के प्रत्यक्ष स्रष्टा प्रतीत होते हैं जिस तरह स्वप्न देखने वाला अपने स्वप्न के भीतर कर्म करता प्रतीत होता है। वे प्रकृति के तीनों गुणों के स्वामी और परम नियन्ता हैं, फिर भी वे पृथक् रहते हैं और शुद्ध तथा अद्वितीय हैं। वे सबों के परम गुरु तथा परब्रह्म के आदि साकार रूप हैं।

तात्पर्य : जब भगवान् अपनी भौतिक शक्तियों को मुक्त करते हैं, तो उनकी अन्योन्य क्रिया से सृष्टि बनती है। भगवान् परम दिव्य सत्ता के रूप में पृथक् रहते हैं। फिर भी चूँकि सारी सृष्टि उनकी योजना तथा इच्छा के अनुसार प्रकट होती है, अतः सारी वस्तुओं में उनका नियामक हाथ देखा जाता है। इस तरह लोग कल्पना करते हैं कि ईश्वर इस जगत का प्रत्यक्ष निर्माता है यद्यपि वे अलग रहते हुए अपनी अनेक शक्तियों के नियोजन से उसकी सृष्टि करते हैं।

कं वृणे नु परं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् ।

यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

कम्—क्या; वृणे—मैं चुनूँ; नु—निस्सन्देह; परम्—अन्य; भूमन्—हे सर्वव्यापक प्रभु; वरम्—वर; त्वत्—आपसे; वर-दर्शनात्—जिनका दर्शन ही सबसे बड़ा वर है; यत्—जिसके; दर्शनात्—दर्शन से; पूर्ण-कामः—सारी इच्छाओं से पूर्ण; सत्य-कामः—किसी भी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने में सक्षम; पुमान्—पुरुष; भवेत्—बन जाता है।

हे सर्वव्यापक प्रभु, चूँकि मुझे आपका दर्शन करने का वर प्राप्त हो चुका है, इसलिए मैं आपसे अन्य किस वर की याचना करूँ? केवल आपका दर्शन करने से मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं और वह कोई भी कल्पित कार्य संपन्न कर सकता है।

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् ।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

वरम्—वर; एकम्—एक; वृणे—याचना करता हूँ; अथ अपि—तो भी; पूर्णात्—जो पूर्ण है उससे; काम-
अभिवर्षणात्—जो इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा करता है; भगवति—भगवान् के लिए; अच्युताम्—अच्युत; भक्तिम्—
भक्ति; तत्-परेषु—उनके शरणागतों; तथा—भी; त्वयि—आप में।

किन्तु मैं आपसे एक वर माँगता हूँ क्योंकि आप समस्त सिद्धि से पूर्ण हैं और समस्त इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा करने में समर्थ हैं। मैं आपसे भगवान् की तथा उनके समर्पित भक्तों की, विशेष रूप से आपकी, अच्युत भक्ति के लिए याचना करता हूँ।

तात्पर्य : तत्परेषु तथा त्वयि पद स्पष्ट बतलाता है कि शिवजी परमेश्वर के भक्त हैं, स्वयं परमेश्वर नहीं। चूँकि ईश्वर के प्रतिनिधि को वही पद दिया जाता है, जो ईश्वर का होता है, इसीलिए मार्कण्डेय ऋषि पिछले श्लोकों में शिवजी को भगवान् कहते हैं। किन्तु अब यह स्पष्ट हो जाता है कि, जैसाकि वैदिक वाङ्मय में कहा गया है, शिवजी ईश्वर के शाश्वत भक्त हैं, ईश्वर नहीं हैं।

चेतना के सूक्ष्म नियमों के अनुसार, इच्छा मन तथा हृदय के भीतर प्रकट होती है। भगवान् की सेवा करने की शुद्ध इच्छा मनुष्य को चेतना के सर्वोच्च पद पर लाती है और जीवन का ऐसा पूर्ण ज्ञान भगवद्भक्तों की विशेष कृपा से ही प्राप्त हो पाता है।

सूत उवाच

इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा ।
तमाह भगवाञ्छर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; इति—इन शब्दों में; अर्चितः—पूजित; अभिष्टुतः—स्तुति किये गये; च—तथा;
मुनिना—मुनि द्वारा; सु-उक्तया—अच्छी तरह कहे गये; गिरा—शब्दों से; तम्—उससे; आह—कहा; भगवान् शर्वः—
शिवजी; शर्वया—अपनी प्रिया शर्वा द्वारा; च—तथा; अभिनन्दितः—प्रोत्साहित।

सूत गोस्वामी ने कहा : मुनि मार्कण्डेय के वाक्पटु कथनों द्वारा पूजित तथा प्रशंसित भगवान् शर्व (शिव) ने अपनी प्रिया द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर उनसे इस प्रकार कहा।

कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे ।
आकल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कामः—इच्छा; महा-ऋषे—हे महर्षि; सर्वः—सारा; अयम्—यह; भक्ति-मान्—भक्ति से पूर्ण; त्वम्—तुम; अधोक्षजे—
भगवान् के लिए; आ-कल्प-अन्तात्—ब्रह्मा के दिन के अन्त तक; यशः—यश; पुण्यम्—पवित्र; अजर-अमरता—
वृद्धावस्था तथा मृत्यु से मुक्ति; तथा—भी।

हे महर्षि, तुम भगवान् अधोक्षज के प्रति अनुरक्त हो, इसलिए तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। इस सृष्टि चक्र के अन्त तक तुम पवित्र यश तथा वृद्धावस्था एवं मृत्यु से मुक्ति का

भोग करोगे ।

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् ।
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यतास्तु ते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

ज्ञानम्—ज्ञान; त्रै-कालिकम्—काल की तीनों अवस्थाओं (भूत, वर्तमान तथा भविष्य) का; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण;
विज्ञानम्—दिव्य अनुभूति; च—भी; विरक्ति-मत्—वैराग्य समेत; ब्रह्म-वर्चस्विनः—ब्रह्म शक्ति से युक्त है, जो उसका;
भूयात्—हो; पुराण-आचार्यता—पुराणों के आचार्य का पद; अस्तु—हो; ते—तुम्हारा ।

हे ब्राह्मण, तुम्हें भूत, वर्तमान तथा भविष्य का पूर्ण ज्ञान और उसी के साथ वैराग्य से युक्त ब्रह्म की दिव्य अनुभूति प्राप्त हो। तुम्हारे पास आदर्श ब्राह्मण का तेज है, जिससे तुम पुराणों के आचार्य का पद पा सको।

सूत उवाच

एवं वरान्स मुनये दत्त्वागात्प्रत्यक्ष ईश्वरः ।
देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुरामुना ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह; वरान्—वर; सः—वह; मुनये—मुनि को; दत्त्वा—देकर;
अगात्—चला गया; त्रि-अक्षः—तीन नेत्रों वाले; ईश्वरः—शिवजी; देव्यै—देवी पार्वती को; तत्-कर्म—मार्कण्डेय के
कार्यकलाप; कथयन्—बतलाते हुए; अनुभूतम्—अनुभव किया हुआ; पुरा—पहले; अमुना—उसके द्वारा, मार्कण्डेय
द्वारा ।

सूत गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि को वर देकर शिवजी अपने मार्ग में देवी पार्वती से ऋषि की उपलब्धियों का तथा उनके द्वारा अनुभव की गई भगवान् की माया के प्रत्यक्ष प्रदर्शन का वर्णन करते चले गये।

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः ।
विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, मार्कण्डेय; अपि—निस्सन्देह; अवाप्त—प्राप्त करके; महा-योग—योग की सर्वोच्च सिद्धि की; महिमा—
महिमा; भार्गव-उत्तमः—श्रेष्ठ भृगुवंशी; विचरति—विचरण कर रहा है; अधुना अपि—आज भी; अद्धा—प्रत्यक्ष; हरौ—
हरि के लिए; एक-अन्तताम्—एकान्तिक भक्ति का पद; गतः—प्राप्त करके ।

श्रेष्ठ भृगुवंशी मार्कण्डेय ऋषि अपनी योग-सिद्धि की उपलब्धि के कारण यशस्वी हैं। आज भी वे इस जगत में भगवान् की अनन्य भक्ति में पूरी तरह लीन होकर विचरण करते हैं।

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः ।

अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अनुवर्णितम्—वर्णन किया गया; एतत्—यह; ते—तुमसे; मार्कण्डेयस्य—मार्कण्डेय का; धी-मतः—बुद्धिमान; अनुभूतम्—अनुभव किया गया; भगवतः—भगवान् का; माया-वैभवम्—माया का ऐश्वर्य; अद्भुतम्—अद्भुत।

इस तरह मैंने तुमसे अत्यन्त बुद्धिमान ऋषि मार्कण्डेय के कार्यकलापों का, विशेष रूप से जिस तरह उन्होंने भगवान् की माया की अद्भुत शक्ति का अनुभव किया, वर्णन कर दिया।

एतत्केचिद्विद्वांसो मायासंसृतिरात्मनः ।

अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; केचित्—कुछ व्यक्ति; अविद्वांसः—जो विद्वान नहीं हैं; माया-संसृतिः—मायामयी सृष्टि; आत्मनः—परमात्मा की; अनादि—अनन्त काल से; आवर्तितम्—पिष्टपेषण की गई; नृणाम्—बद्धजीवों का; कादाचित्कम्—अभूतपूर्व; प्रचक्षते—कहते हैं।

यद्यपि यह घटना अद्वितीय तथा अभूतपूर्व थी, किन्तु कुछ अज्ञानी लोग इसकी तुलना बद्धजीवों के लिए भगवान् द्वारा रचित मायामय जगत के चक्र से करते हैं—ऐसा अन्तहीन चक्र जो अनन्त काल से चल रहा है।

तात्पर्य : मार्कण्डेय का भगवान् की श्वास से उनके शरीर में खिंच जाने और प्रश्वास के साथ बाहर आ जाने को सृष्टि तथा प्रलय के निरन्तर चक्र का प्रतीकात्मक वर्णन नहीं मानना चाहिए। श्रीमद्भागवत का यह अंश एक भगवद्भक्त द्वारा अनुभव की हुई असली ऐतिहासिक घटना है। जो लोग इस कथा को प्रतीकात्मक रूपक मात्र मानते हैं उन्हें यहाँ अज्ञानी मूर्ख कहा गया है।

य एवमेतद्भृगुवर्यं वर्णितं

रथाङ्गपाणोरनुभावभावितम् ।

संश्रावयेत्संश्रुणुयाद् तावुभौ

तयोर्न कर्माशयसंसृतिर्भवेत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; भृगु-वर्य—हे श्रेष्ठ भृगुवंशी (शौनक); वर्णितम्—वर्णित; रथ-अङ्ग-पाणेः—रथ के पहिए को हाथ में धारण करने वाले श्री हरि का; अनुभाव—शक्ति से; भावितम्—सिक्त; संश्रावयेत्—सुनाता है; संश्रुणुयात्—स्वयं सुनता है; उ—अथवा; तौ—वे; उभौ—दोनों; तयोः—उनके; न—नहीं; कर्म-आशय—सकाम कर्म की मनोवृत्ति पर आधारित; संसृतिः—भौतिक जीवन का चक्र; भवेत्—है।

हे श्रेष्ठ भृगुवंशी, मार्कण्डेय ऋषि से सम्बन्धित यह विवरण भगवान् की दिव्य शक्ति को बताने वाला है। जो कोई इसका ठीक से वर्णन करता है या इसे सुनता है, उसे सकाम कर्म करने की इच्छा पर आधारित भौतिक जगत में फिर से नहीं आना होगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध के अन्तर्गत “शिव तथा उमा द्वारा मार्कण्डेय ऋषि

का गुणगान'' नामक दसवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।